पाठालोचन : पुनर्नवा कालिदास का एकमात्र मार्ग

वसन्तकुमार म. भट्ट
आचार्य एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदावाद – 380 009

bhattvasant@yahoo.co.in

भूमिकाः--- कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल सर्वश्रेष्ठ नाटक है इस में कोई दो मत नहीं है। लेकिन उनमें से किसी भी वाक्य को लेकर यदि पूछा जाय कि क्या यह वाक्य कालिदास ने लिखा था ? तो हम एकमति नहीं रहेंगे। क्योंकि इस नाटक का पाठ बहुविध पाठभेद, प्रक्षेप एवं संक्षेप से ग्रस्त है। उनमें से सर्वथा मौलिक पाठ ढूँढना कदाचित् सम्भव नहीं होगा, क्योंकि दो हजार वर्षों की लम्बी कालावधि पार करके महाकवि का पाठ हम तक पहुँचा है। अतः प्राचीन से प्राचीनतर एवं प्राचीनतर से प्राचीनतम पाठ का निर्धारण करना, तथा सर्वाधिक श्रद्धेय पाठ निश्चित करना वही आज की इतिकर्तव्यता है।।

बहुत पुराने समय से ऐसा कहा गया है कि अभिज्ञानशाकुन्तल के सातों अङ्कों में से चतुर्थाङ्क सर्वोत्कृष्ट है[1]। लेकिन देवनागरी वाचना का जो पाठ सुप्रचलित एवं (प्रायः) सर्वस्वीकृत हुआ है क्या वह पूर्ण रूप से ग्राह्य अथवा श्रद्धेय है ? यह प्रश्न विचारणीय है[2]। क्योंकि इस नाटक का देवनागरी वाचना में संचरित हुआ पाठ संक्षिप्त किया गया पाठ होने के साथ साथ बहुत प्रदूषित हुआ पाठ भी है। स्थाली-पुलाक न्याय से यहाँ पर शाकुन्तल के चतुर्थाङ्क के विष्कम्भक का एक छोटासा अंश लिया जाता है, जिसमें दुर्वासा के शाप-प्रसंग के आगे पीछे आया हुआ दोनों सखियों का जो संवाद है, वह अनेक विसंगतिओं से ग्रसित है। इन विसंगतिओं से बाहर निकलने के लिए, उपलब्ध पाँचों वाचनाओं के पाठ का तुलनात्मक अभ्यास करना अनिवार्य है। भाग्यवशात् काश्मीर की शारदालिपि में लिखित पाण्डुलिपियों में से पूर्वापर सन्दर्भ में तर्कसंगत और नाट्यानुरूप पाठ मिलता है। अतः उसमें काफी हद तक श्रद्धेय पाठ सुरक्षित रहा होगा ऐसी प्रतीति हो रही है।।

[1]

चतुर्थाङ्क के आरम्भ में विष्कम्भक रखा गया है। शकुन्तला की दोनों सहेलियाँ आश्रम के नजदीक में कुत्रचित् खड़ी है। वृक्ष-लताओं पर से बलिकर्म के लिए आवश्यक पुष्पों का चयन कर रही है, और आपस में शकुन्तला-सम्बद्ध बातचीत भी कर रही है। उस समय वहाँ दुर्भाग्यवशात् दुर्वासा मुनि का आगमन होता है और शाप-प्रसंग आकारित होता है। इस शाप से पूर्व में और शाप के पश्चात् प्रियंवदा तथा अनसूया का परस्पर में जो संवाद होता है, हम उसका तीन भागों में विभाजन करके उसकी समीक्षा करेंगे। (यहाँ लिये गये पाठ पर राघवभट्ट ने टीका लिखी है,[3] और देवनागरी वाचना की पाण्डुलिपिओं में भी वही पाठ प्रायः संचरित हुआ है।

---

[1] कालिदासस्य सर्वस्वम् अभिज्ञानशाकुन्तलम्।
तत्रापि च चतुर्थो ऽङ्को यत्र याति शकुन्तला।। (कस्यापि)

[2] द्रष्टव्यः-- "अभिज्ञानशाकुन्तल की देवनागरी वाचना में संक्षेपीकरण के पदचिह्न" शीर्षकवाला मेरा लेख, जो डॉ. हरिसिंह गौर वि. वि., सागर से "नाट्यम्" पत्रिका (2013-14) में प्रकाशित होनेवाला है।।

[3] "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" राघवभट्टस्यार्थद्योतनिकया सनाथीकृतम्। राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006

तथा प्रकाशित अन्य संस्करणों में भी यही पाठ बहुशः मान्य रखा गया है ।) प्रथम भाग में जिस अंश को लिया जाता है, वह निम्नोक्त स्वरूप में प्रचलित हैः—

1. **अनसूया** – गुणवदे कण्णआ पडिवादणिज्जे त्ति अअं दाव पढमो से संकप्पो । तं जइ देव्वं एव्व संपादेदि णं अप्पआसेण किदत्थो गुरुअणो । (गुणवते कन्यका प्रतिपादनीयेत्ययं तावत्प्रथमोऽस्य संकल्पः । तं यदि दैवमेव सम्पादयति नन्वप्रयासेन । कृतार्थो गुरुजनः ।)
2. **प्रियंवदा** – (पुष्पभाजनं विलोक्य) सहि, अवइदाइं बलिकम्मपयज्जत्ताइं कुसुमाइं । (सखि, अवचितानि बलिकर्मपर्याप्तानि कुसुमानि ।)
3. **अनसूया** – णं सहीए सउंदलाए सोहग्गदेवआ अच्चणीआ । (ननु सख्याः शकुन्तलयाः सौभाग्यदेवताऽर्चनीया ।)
4. **प्रियंवदा** – जुज्जदि । (युज्यते ।) (इति तदेव कर्मारभते ।)

(**नेपथ्ये**)

अयमहं भोः ..... ।

5. **अनसूया** – (कर्णं दत्वा) सहि, अदिधीणं विअ णिवेदिदं । (सखि, अतिथीनामिव निवेदितम् ।)
6. **प्रियंवदा** – णं उडजसण्णिहिदा सउंदला । (***<u>आत्मगतम्</u>***) अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा । (ननूटज-संनिहिता शकुन्तला । (***<u>आत्मगतम्</u>***) अद्य पुनर् हृदयेनासंनिहिता ।)
7. **अनसूया** – भोदु । अलं एत्तिएहिं कुसुमेहिं । (भवतु, अलमेतावद्भिः कुसुमैः ।) (इति प्रस्थिते)
8. (**नेपथ्ये**)

आः, अतिथिपरिभाविनि,

विचिन्तयन्ती यम् अनन्यमानसा
तपोधनं वेत्सि न माम् उपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वाम् न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ।। (4 – 1) ।।

विसंगति का निरूपणः—

(1) यहाँ अनसूया के मुख में जो तीसरी प्राकृत-उक्ति है, उसका संस्कृत छायानुवाद तृतीया विभक्ति से होना चाहिए । लेकिन वह षष्ठी विभक्ति में किया गया है । इस विसंगति का क्या कारण हो सकता है ? । (इस विसंगति का परामर्शन प्रस्तुत आलेख के अन्तिम [4] पेरेग्राफ में किया जायेगा)

(2) प्रियंवदा के मुख में जो षष्ठ उक्ति है, उसमें दूसरा वाक्य "आत्मगतम्" की रंगसूचना के साथ अवतारित है । लेकिन यह उक्ति यदि आत्मगत है तो उसके अनुसन्धान में अनसूया की उक्ति (7) की संगति बिठाना सम्भव नहीं है ।। यहाँ पर, "अद्य पुनर्हृदयेनासंनिहिता" वाली उक्ति प्रियंवदा की स्वगत (आत्मगत) उक्ति है ऐसी रंगसूचना को देख कर प्रश्न होता है कि जब अनसूया ने प्रियंवदा की आत्मगत उक्ति सुनी ही नहीं होगी तो, वह "इतने पुष्प पर्याप्त है, (चलो शकुन्तला के पास ही जाते है ।)" ऐसा कैसे कहेगी ? ।

(3) अनसूया की (क्रमांक – 7 वाली) उक्ति में कहा जाता है कि, भवतु, अलम् एतावद्भिः कुसुमैः । (अर्थात् – रहने दो, इन फूलों से क्या लाभ ? । - अनुवादकः पं. श्री रेवाप्रसाद जी द्विवेदी) वह भी अनसूया ने जो पहेले कहा है कि शकुन्तला के सौभाग्य-देवता की अर्चना करनी है, उससे विपरित जा कर वह किस आधार पर कह रही है कि रहने दो, इन फूलों से क्या लाभ ? । जब उसने पहेलेवाली प्रियंवदा की उक्ति सुनी ही नहीं है ? । दूसरी तरह से सोचे तो, यहाँ अलम् अव्यय के साथ जो तृतीया का प्रयोग है वह चिन्त्य है ।

प्रियंवदा के दूसरे वाक्य को आत्मगत उक्ति के रूप में प्रस्तुत करने के पीछे, आशय क्या होगा ? यहाँ, प्रियंवदा के द्वारा शकुन्तला की मजाक उ ड़ाने का आशय तो हो ही नहीं सकता । क्योंकि उसके लिए तो यह स्थान और क्षण बिलकुल अनुचित है । यह भी साफ है कि प्रियंवदा अपने मन के अन्दर चल रहे उचाट और तनाव की स्थिति को अनसूया से क्यूँ छुपा कर रखेगी ? इन तीनों सखियों के बीच में इतना तादात्म्य है कि प्रियंवदा अपने मन की बात खुल कर न बतावें ऐसा हो ही नहीं सकता है ।। अतः यह आत्मगतम् वाली रंगसूचना प्रक्षिप्त होने की सम्भावना जागृत होती है । इसका परीक्षण करने के लिए, हमें तुलनात्मक दृष्टि से काश्मीरी वाचना का पाठ देखना चाहिए ।

शारदालिपि में लिखी हुई काश्मीरी पाण्डुलिपियों में निम्नोक्त पाठ मिलता हैः—

अनसूया – (श्रुत्वा) अदिधिणा विअ णिवेदिदम् । (अतिथिनेव निवेदितम् ।)

प्रियंवदा – सहि, णं उडजसण्णिहिदा सउन्तला । आं, अज्ज उण हिअएण असण्णिहिदा ।

(सखि, ननु उटज-संनिहिता शकुन्तला । आम्, अद्य पुनर् हृदयेनासंनिहिता ।)

अनसूया – (सत्वरम्) तेण हि भोदु । एत्तिआइं कुसुमाइं । (तेन हि, भवतु एतावन्ति कुसुमानि ।)

(प्रस्थिते)

यहाँ पर देखा जाता है कि प्रियंवदा की वह उक्ति आत्मगत (अर्थात् स्वगत) उक्ति के रूप में नहीं है । बल्कि, उस दूसरे वाक्य का प्रारम्भ "आम्" ऐसे उद्गार से हो रहा है । संस्कृतभाषा में, वह अव्यय स्मरणार्थक माना गया है । (और रिचार्ड पिशेल ने बंगाली वाचना के पाठ में "आम्" से पहेले "विचिन्त्य" ऐसी एक रंगसूचना भी है ऐसा दिखाया है ।) अब इस तरह के पाठ को देखने से पूर्वोक्त विसंगति हट जाती है । क्योंकि अब अनसूया ने प्रियंवदा की प्रकट (प्रकाश)उक्ति सुनी है कि शकुन्तला हृदय से असन्निहित (अर्थात् दुष्यन्त के विचारों में लीन) है । (अतः वह अतिथि का ध्यान नहीं रख सकेगी ।) अनसूया अब त्वरा के साथ, बस इतने पुष्पों से काम चल जायेगा, ऐसा बोल के जल्दी से शकुन्तला के पास जाने के लिए प्रियंवदा को लेकर चली जाती है । इस तरह से काश्मीरी पाठ ही में, प्रियंवदा की प्रकट उक्ति के अनुसन्धान में अनसूया की प्रतिक्रिया तर्क-संगत दिखती है ।।

उपरि भाग में जो तीसरी विसंगति का निरूपण किया गया है, उसको ठीक तरह से समझने के लिए इस सन्दर्भ का काश्मीरी वाचना का पाठ द्रष्टव्य हैः —अनसूया – (सत्वरम्) तेण हि, भोदु एत्तिआइं कुसुमाइं । (तेन हि, भवतु एतावन्ति कुसुमानि ।) [और मैथिली में "भोदु, एत्तिकेहिं कुसुमेहिं पओअणं " ऐसा पाठ है । तथा

बंगाली में "तेण हि भोदु एत्तिकेहिं कुसुमेहिं पओअणं ।" ऐसा पाठ है । इन दोनों में कुसुमैः जैसे तृतीयान्त पद का अर्थ विशद करने के लिए ही सम्भवतः प्रयोजनम् ऐसे एक अधिक शब्द का प्रक्षेप दिख रहा है ।] इससे स्पष्ट होता है कि बृहत्पाठ परम्परावाली उपर्युक्त तीनों वाचनाओं के पाठ में अलम् का प्रयोग ही नहीं है । इस लिए देवनागरी एवं दाक्षिणात्य पाठ की तरह यहाँ अनसूया की उक्ति में से कोई विसंगति प्रकट नहीं होती है ।। प्राकृत भाषा में चतुर्थी विभक्ति का उपयोग होता ही नहीं है, इस लिए एक बार अलम् अव्यय का प्रयोग किया जायेगा तो फिर अलम् के साथ प्रयुक्त होनेवाली तृतीया का अनुवाद अगतिकतया "रहने दो, इन फूलों से क्या लाभ ?" ऐसा ही करना होगा । जिसके फल स्वरूप उपर्युक्त विकृत स्थिति पैदा होगी ही । अतः अनुमान करने का मन होता है कि काश्मीरी पाठ में मौलिकता सुरक्षित रह पाई है ।।

देवनागरी पाठ की पूर्वोक्त दोनों विसंगतिओं से यदि पाठक या दर्शक का मन आक्रान्त हो जाता है तो, एक महत्त्वपूर्ण नाट्यात्मक वक्रता की ओर उसका ध्यान कदाचित् ही जायेगा । जैसे कि, यहाँ काश्मीरी पाठ के अनुसार, प्रियंवदा पुष्पभाजन की ओर देख कर कहती है कि बलिकर्म के लिए पर्याप्त पुष्पों का चयन हो गया है । तो अनसूया ने कहा कि शकुन्तला को सौभाग्यदेवता की भी अर्चना करनी है, इस लिए कुछ अधिक पुष्पों का चयन किया जाय । इस निमित्त से दोनों सहेलियाँ कुछ अधिक समय के लिए व्यस्त हो जाती है, अर्थात् वहीं पर रुक जाती है । बस इतनी देर में, नेपथ्य से आवाज आती है कि – अयम् अयं भोः ... । अनसूया ने समझ लिया कि कोई अतिथि आये हुये है । तब प्रियंवदा कहती है कि शकुन्तला उटज पर मौजुद है, (इस लिए अतिथि का सत्कार कर लेगी ।), लेकिन दूसरी क्षण पर उसे याद आता है कि शकुन्तला शरीर से उटज के पास जरूर है, किन्तु वह हृदय से तो वहाँ नहीं होगी । (क्योंकि ऋषियों ने आज ही दुःषन्त को नगर-गमन के लिए विसर्जित किया है ।) इतना सुनते ही, अनसूया ने तत्क्षण बोल दिया कि इतने पुष्प पर्याप्त है । अब जल्दी से वे शकुन्तला के पास पहुँचने के लिए प्रस्थान कर देती है । किन्तु, एक क्षण का विलम्ब भी दुर्वासा के लिए असह्य था, उन्होंने तो "आः, अतिथिपरिभाविनि" ... इत्यादि शब्दों से शकुन्तला को शाप दे ही दिया ।।

इस तरह से, अनसूया ने सद्भावना से प्रेरित हो कर कुछ अधिक पुष्पों का चयन करने का कहा और उसी कार्य में दोनों व्यापृत रहती है । प्रियंवदा ने जो कहा कि शकुन्तला (आज) हृदय से अन्निहित है, तो उसको सुन कर सद्यः वह पुष्पचयन को छो ड़ कर शकुन्तला के पास जाने के लिए उतावली भी हो जाती है । इस तत्परता के पीछे भी शकुन्तला के लिए उसके मन में सदैव जागृत रहती सद्भावना ही दिखती है । किन्तु दैव ने उसी सद्भावना का विडम्बन [4] किया, जो एक नाट्यात्मक वक्रता का स्थान बनता है । यदि कुछ क्षणों की देरी नहीं होती, और दोनों सखियाँ पहेले से ही शकुन्तला के पास पहुँच गई होती तो सम्भव है कि शकुन्तला शापित होने से बच जाती । लेकिन अनसूया की सद्भावना ने ही सौभाग्यदेवता के लिए अधिक पुष्पों को लेने के बहाने देरी करवाई, और प्रियंवदा की प्रकाशोक्ति ने जल्दी भी करवाई फिर भी दुर्भाग्य को सफल होने का मौका मिल गया । इस तरह के काश्मीरी (मैथिली एवं बंगाली) वाचना के पाठ्यांश में से नाट्यात्मक-वक्रता अभिव्यक्त होती है । लेकिन देवनागरी पाठ में पूर्वोक्त विसंगति बीच में आ जाने से इस वक्रता का बोध विलम्बित या दुर्गम

[4] संस्कृत में विडम्बन का अर्थ अनुकरण है, किन्तु खड़ी हिन्दी में तिरस्कार, या वक्रता पूर्ण उपहास अर्थ होता है, जो यहाँ अभीष्ट है ।

हो जाता है ।। दाक्षिणात्य वाचना में जो पाठसंचरित हुआ है, वह मैथिली वाचनानुसार है । अतः वहाँ पर देवनागरी वाचना जैसी विकृति पैदा नहीं हुई है ।।

[2]

अब दुर्वासा-शाप प्रसंग से सम्बद्ध संवाद का दूसरा अंश समीक्ष्य है । इसमें प्रियंवदा ने दुर्वासा के शाप को सुन कर कुल मिला के छह वाक्यों में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है । इसका राघवभट्ट द्वारा स्वीकृत देवनागरी पाठ निम्नोक्त हैः---

9. **प्रियंवदा** – हद्धी, अप्पिअं एव्व संवुत्तं । कस्सिं पि पूआरुहे अवरुद्धा सुण्णहिअआ सउंदला ।
(पुरोऽवलोक्य) णहु जस्सिं कस्सिं पि । एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसी । तह सविअ वेअबलुप्फुल्लाए दुव्वाराए गईए पडिणिवुत्तो । को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि ।
(हा धिक्, अप्रियमेव संवृत्तम् । कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शून्यहृदया शकुन्तला । न खलु यस्मिन् कस्मिन्नपि । एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः । तथा शस्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः । कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ।)

10. **अनसूया** – गच्छ, पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं जाव अहं अग्घोदअं उवकंपेमि ।
(गच्छ, पादयोः प्रणम्य निवर्तयैनं यावदहमर्घोदकमुपकल्पयामि ।)

11. **प्रियंवदा** – तह । (तथा) (इति निष्क्रान्ता)

12. **अनसूया** – (पदान्तरे स्खलितं निरूप्य) अव्वो, आवेगक्खलिदाए गईए पब्भट्ठं मे अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं । (अहो, आवेगस्खलितया गत्या प्रभ्रष्टं ममाग्रहस्तात् पुष्पभाजनम् ।)
(इति पुष्पोच्चयं रूपयति ।)

विसंगति का निरूपणः—

(1) उक्ति क्रमांक 9 में प्रियंवदा ने ही शाप-सम्बद्धी सब तरह की सूचनायें दे दी है । सामान्यतया नाटक में आरोहावरोहयुक्त जो भावाभिव्यक्ति होनी चाहिए उस नियम का यहाँ परिपालन नहीं दिखता है । (उपर देवनागरी वाचना के पाठ में जो प्रियंवदा की उक्ति है, वही लम्बी उक्ति दाक्षिणात्य वाचना के पाठ में (जिस पाठ पर काटयवेम ने कुमारगिरिराजीया टीका लिखी है, उसमें) अनसूया के मुख में रखी गई है । अतः जो दोष देवनागरी के पाठ में है, वही दोष दाक्षिणात्य पाठ में भी विद्यमान है ।)

(2) यहाँ, इतनी सारी सूचनाओं का श्रवण अनसूया निर्विकार रूप से करती रहे – यह भी चिन्त्य है । इससे भी बढ़ कर एक विसंगति यह है कि जब अनसूया प्रियंवदा को कहती है कि तुम जा कर दुर्वासा का अनुनय करो, उनको वापस बुलाके लावो, उनकी क्षमा-याचना करो । तो शाप-मोचन की याचना करने की विशेष कुशलता अनसूया में ही हो सकती है ऐसा प्रेक्षकों के चित्त में जो खयाल बना हुआ है, उससे विपरित योजनावाला पाठ देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचना में है ।

(3) इस पाठ के मुताबिक अनसूया के हाथ में से पुष्पभाजन गिर जाता है, जो अनसूया के कौशल और धीर-गम्भीर प्रकृति को देखते हुए असमञ्जस लगता है ।।

काश्मीर की शारदा पाण्डुलिपियों में (और मैथिली एवं बंगाली वाचना के पाठ में) मिलनेवाला इस सन्दर्भ का निम्नोल्लिखित पाठ देवनागरी पाठ के साथ तुलनीय है:—

प्रियंवदा – हद्धि येव संवुत्तम् । कस्सिं पि पूआरिहे अवराद्धा सुण्णहिअआ कशि ।

(हा धिक् एव संवृत्तम्, कस्मिन्नपि पूजार्हेपराद्धा शून्यहृदया सखी ।)

अनसूया – (विलोक्य) ण क्खु ण क्खु जस्सिं तस्सिं । सुलहकोवो क्खु एसो दुव्वासा महेसि । हुदासो विअ तुरिदपादुद्धाराए गदीए गच्छिदुं पउत्तो । (न खलु न खलु यस्मिन् तस्मिन्, सुलभकोपो खलु एष दुर्वासा महर्षिः । हुताश इव त्वरितपादोद्धारया गत्या गन्तुं प्रवृत्तः ।)

प्रियंवदा – को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहविस्सदि । अणसुए, गच्छ पादेसु पडिअ पसाएहि णं । जाव अहं से अग्घादिअं उवकप्पेमि । (कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभविष्यति । अनसूये, गच्छ पादेषु पतित्वा प्रसादयैनम् । यावद् अहम् अस्य अर्घादिकम् उपकल्पयामि ।) (अनसूया निष्क्रान्ता)

प्रियंवदा – (पादान्तरे स्खलितं निरूप्य) अम्मो, आवेअक्खलिदाए पब्भट्ठं अग्गहत्थादो पुप्फभाअणं मे । ता पुणो वि अवचिणिस्सं । (अहो आवेगस्खलितायाः प्रभ्रष्टम् अग्रहस्तात् पुष्पभाजनं मे । तत् पुनरप्य-वचेष्यामि ।) (तथा करोति ।)

यहाँ अभिज्ञानशकुन्तलम् की बृहत्पाठपरम्परा की रक्षा करनेवाली तीनों (काश्मीरी, मैथिली और बंगाली) वाचनाओं में शाप-प्रसंग का जो द्वितीय अंश है, 1. उसमें पूर्वोक्त विसंगति नहीं है । क्योंकि यहाँ शाप-सम्बद्ध सभी वृत्तान्त का बयान अकेली प्रियंवदा ही नहीं करती है । यह वृत्तान्त दोनों सखियों में सुसंगत रूप से विभक्त किया हुआ है, और उसमें नाट्यानुरूप आरोहावरोहात्मक भावाभिव्यक्ति दिख रही है ।। तथा, 2. शाप-वचन सुनते ही, दोनों सहेलियाँ एकदम सक्रिय हो जाती है, और अनसूया पूरी खबरदारी से, (दूर दूर तक) देख कर जान लेती है कि शाप देनेवाला ओर कोई नहीं था, वह तो दुर्वासा थे । 3. अनसूया ने यह भी देख लिया है कि वे क्रोधाविष्ट ऋषि कैसी गति से (किस दिशा में) चल प ड़े है ? । 4. अतः प्रियंवदा ही उसको कहती है कि, अनसूये, तुम ही उसे मनाने के लिए जाव । और मैं अर्घ्य-उदकादि को तैयार रखती हूँ । शाप-मोचन की याचना करने के लिए अनसूया का जाना उसके स्वभाव को देखते हुए उचित प्रतीत होता है । अन्त में, 5. चञ्चल स्वभाववाली प्रियंवदा के हाथ में से ही, असावधानी से चलने के कारण, पुष्पभाजन गिर जाता है ।।

इस तरह से काश्मीरी आदि पूर्व-निर्दिष्ट तीनों वाचनाओं के पाठ में कोई विसंगति नहीं है । बल्कि उन्हीं में, इस प्रसंग की नाट्यात्मकता से भरी संवाद-शृङ्खला संचरित हुई है, सुरक्षित रही है । लेकिन शाप-सम्बद्ध छह वाक्यों का सुदीर्घ संवाद केवल एक ही व्यक्ति (चाहे वह प्रियंवदा हो या फिर अनसूया हो उस)के मुख में रख कर, देवनागरी[5] और दाक्षिणात्य वाचनाओं में प्रसंग की नाट्यात्मकता का हनन किया गया है ।।

*** *** ***

[5] श्री पी. एन. पाटनकर जी(1902) के द्वारा सम्पादित "शुद्धतर देवनागरी पाठ" में भी उपर्युक्त काश्मीरी पाठ जैसा ही पाठ स्वीकार्य रहा है । और उसका कारण भी यही है कि पाटनकर जी ने इस प्रसंग के संवाद को डॉ. कार्ल बुरखड (1884) के काश्मीरी पाठवाले अभिज्ञानशाकुन्तल से ही लिया है !

विद्वन्मूर्धन्य प्रोफे. डॉ. श्री रेवाप्रसाद द्विवेदी जी (काशी) ने देवनागरी वाचना को ही श्रद्धेय मान कर उसे स्वीकारा है [6]। अतः उन्होंने इस शाप-प्रसंग का पाठ किस तरह से प्रस्तुत किया है, वह भी यहाँ पर समीक्षणीय है। कालिदास-ग्रन्थावली में, प्रियंवदा के मुख में छह वाक्यों का दीर्घ वक्तव्य नहीं है। किन्तु दोनों के द्वारा जो क्रमशः वाक्य बोले जाते हैं, वह इस तरह रखें गये हैः—

अनसूया – (पुरो वलोक्य) णहु जस्सिं कस्सिं वि। एसो दुव्वासो सुलहकोवो महेसि। तधा सविअ वेअवलुप्फुल्लआ दुव्वारआ गइए पडिणिवुत्तो। (न हि यस्मिन् कस्मिन्नपि। एष दुर्वासाः सुलभकोपो महर्षिः। तथा शप्त्वा वेगबलोत्फुल्लया दुर्वारया गत्या प्रतिनिवृत्तः।)

प्रियंवदा – को अण्णो हुदवहादो दहिदुं पहवदि। (कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति।)

अनसूया – पियंवदे, गच्छ पादेसु पणमिअ णिवत्तेहि णं, जाव अहं अग्घोदअं उपकप्पेमि। (प्रियंवदे, गच्छ पादयोः प्रणम्य निवर्तय एनम्, यावदहम् अर्घोदकमुपकल्पयामि।)

प्रियंवदा – तधा। (तथा) (निष्क्रान्ता)

इस पाठ में भी दो तरह की आपत्तियाँ दिख रही हैः—1. शाप दे कर चले जा रहे दुर्वासा को अनसूया ने देखा है, तो वही व्यक्ति जानती होगी कि दुर्वासा किस दिशा में गये है। अतः उसीको शाप-मोचन की प्रार्थना करने के लिए जाना समुचित लगता है। लेकिन उपरि निर्दिष्ट पाठ्यांश में वैसा नहीं है। यद्यपि प्रॉफे. श्री रेवाप्रसाद जी ने प्रियंवदा का जाना ही उचित है ऐसा कालिदास-ग्रन्थावली में पादटिप्पणी में लिखा है। इस सन्दर्भ में प्रत्येक भावक का स्वकीय अभिप्राय हो सकता है, जैसे कि शाप-मोचन मांगने के लिए जाने में अमुक व्यक्ति की ही काबेलियत है, दूसरे की नहीं। लेकिन दुर्वासा को जाते हुए देखनेवाली व्यक्ति ही उसके पास सफलता और शीघ्रता से पहुँच सकती है, इस सहज तर्क को साधारणतया स्वीकार्य रखना चाहिए।।

*** *** ***

[3]

देवनागरी वाचना में शाप-प्रसंग के उत्तरार्ध में जो पाठ है वह निम्नोक्त हैः—

13. प्रियंवदा – (प्रविश्य) सहि, पकिदिवक्को सो कस्स अणुणअं पडिगेण्हदि। किं वि उण साणुक्कोसो किदो। (सखि, प्रकृतिवक्रः स कस्यानुनयं प्रतिगृह्णाति। किमपि पुनः सानुक्रोशः कृतः।)

14. अनसूया – (सस्मितम्) तस्सिं बहु एदं पि कहेहि। (तस्मिन् बह्वेतदपि कथय।)

15. प्रियंवदा – जदा णिवत्तिदुं ण इच्छदि तदा विण्णविदो मए। भअवं, पढम त्ति पेक्खिअ अविण्णाद-तवप्पहावस्स दुहिदुजणस्स भअवदा एक्को अवराहो मरिसिदव्वो त्ति। (यदा निवर्तितुं नेच्छति तदा विज्ञापितो मया। भगवन्, प्रथम इति प्रेक्ष्याविज्ञाततपःप्रभावस्य दुहितृजनस्य भगवतैको पराधो मर्षितव्य इति।)

---

[6] कालिदास-ग्रन्थावली, (द्वितीय संस्करण), बनारस हिन्दू वि. वि., वाराणसी, 1986, एवं कालिदाससंस्कृत अकादेमी, उज्जयिनी, 2008

16. अनसूया – तदो तदो । (ततस्ततः ।)

17. प्रियंवदा – तदो मे वअणं अण्णहाभविदुं णारिहदि । किंदु अहिण्णाणाभरणदंसणेण सावो णिवत्तिस्सदि त्ति मंतअंतो सअं अंतरिहिदो । (ततो मे वचनमन्यथा भवितुं नार्हति । किंत्वभिज्ञानाभरण-दर्शनेन शापो निवर्तिष्यत इति मन्त्रयन् स्वयमन्तर्हितः ।)

18. अनसूया – सक्कं दाणिं अस्ससिदुं । अत्थि तेण राएसिणा संपत्थिदेण सणामहेअंकिअं अंगुलीअअं सुमरणीअं त्ति सअं पिणद्धं । तस्सिं साहीणोबाआ सउंदला भविस्सदि । (शक्यमिदानीम् आश्वासयितुम् । अस्ति तेन राजर्षिणा संप्रस्थितेन स्वनामधेयाङ्कितमङ्गुलीयकं स्मरणीय-मिति स्वयं पिनद्धम् । तस्मिन् स्वाधीनोपाया शकुन्तला भविष्यति ।)

***19.* प्रियंवदा** – *सहि, एहि, देवकज्जं दाव णिव्वत्तेम्ह । (सखि, एहि, देवकार्यं तावन्निर्वर्तयावः ।)*

(<u>इति परिक्रामतः</u> ।)

20. प्रियंवदा – (विलोक्य) अणसूये, पेक्ख दाव । वामहत्थोवहिदअवणा आलिहिदा विअ पिअसही । भत्तुगदाए चिंताए अत्ताणं पि एसा विभावेदि । किं उण आअंतुअं । (अनसूये, पश्य तावत् । वामहस्तोपहितमदनालिखितेव प्रियसखी । भर्तृगतया चिन्तयात्मानमपि नैषा विभावयति । किं पुनरागन्तुकम् ।)

21. अनसूया – पिअंवदे, दुवेणं एव्व णं मुहे एसो वुत्तंतो चिट्ठदु । रक्खिदव्वा खु पकिदिपेलवा पिअसही । (प्रियंवदे, द्वयोरेव ननु नौ मुख एष वृत्तान्तस्तिष्ठतु । रक्षितव्या प्रकृतिपेलवा प्रियसखी ।)

22. प्रियंवदा – को णाम उण्होदएण णोमालिअं सिंचेदि । (को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति ।)

विसंगति का निरूपणः—

यहाँ शाप-प्रसंग के पूर्वार्ध में, 1. दुर्वासा के शाप के प्रतिविधान (या शापमोचन) की प्रार्थना करने के लिए दो सहेलियों में से कौन जाती है यह विवाद का स्थान है । जैसे कि – देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं के पाठानुसार प्रियंवदा दुर्वासा के पास जाती है, और वह अनसूया की सूचना से जाती है । किन्तु काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठानुसार इस गम्भीर कार्य के लिए, अनसूया दुर्वासा के पास जाती है, और उसको ऐसा करने का कहनेवाली प्रियंवदा है ।। इस शाप-प्रसंग के उत्तरार्ध में, 2. शकुन्तला को जो शाप दिया गया है वह दोनों सहेलियों के बीच में ही छुपा कर रखने का प्रस्ताव किसने रखा था ? यह भी उपलब्ध पाठान्तरों के हिसाब से विवाद का विषय है । जैसे कि – मैथिली, बंगाली, देवनागरी और दाक्षिणात्य वाचनाओं में ऐसा पाठ मिलता है कि दुर्वासा के द्वारा दिये गये शाप-वृत्तान्त को शकुन्तला से छुपा कर रखने का प्रस्ताव अनसूया ने किया था । और प्रियंवदा ने उसमें सहमति दिखाई थी । इससे विपरित, काश्मीर की शारदालिपि में लिखित जो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो रही हैं उसमें दुर्वासा के शाप को छुपा कर रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा का था, और अनसूया ने उसको मान्य रखा था ।।

ब्राह्मी लिपि से निकली सभी भारतीय लिपियों का ऐतिहासिक विकास देखा जाय तो बंगाली या मैथिली से भी अधिक प्राचीन तो काश्मीर की शारदा-लिपि ही है [7]। अतः इन तीनों में से शारदा-पाठ परम्परा प्राचीनतर होने से उसका पाठ अधिक श्रद्धेय मानना चाहिए। अर्थात् शाप-वृत्तान्त के पूर्वार्ध में, दुर्वासा से शाप का प्रतिविधान माँगने के लिए अनसूया को ही भेजी गई थी। [शाप-वृत्तान्त के पूर्वार्ध का भाग देवनागरी एवं दाक्षिणात्य वाचनाओं में विकृत हुआ है।] तथा उत्तरार्ध में, इस शाप को शकुन्तला से छुपा कर रखने का प्रस्ताव अनसूया का नहीं, बल्कि प्रियंवदा का ही था ऐसा मानना होगा। [शाप-वृत्तान्त के उत्तरार्ध में, काश्मीरी वाचना के पाठ को छो ड़ कर अन्य सभी वाचनाओं में विकृति पैदा हुई है।] लिपियों के इतिहास को ध्यान में रख कर सोचा जाय तो शारदा पाण्डुलिपिओं का प्राचीनतम होना एक निर्विवाद हकीकत है।।

शाप-प्रसंग से जु ड़े इस विवाद को सुलझाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि चरित्रचित्रण की दृष्टि से, महाकवि ने प्रेक्षकों के मानस-पटल पर दोनों सहेलियों के स्वभाव का एक निश्चित स्वरूप ख ड़ा किया है। यदि इसको ध्यान में लिया जाय तो, शाप के प्रतिविधान (या शाप-मोचन) की याचना करने के लिए दुर्वासा के पास अनसूया का जाना ही मान्य हो सकता है। तथा शाप-वृत्तान्त को नवमालिका सदृश अतिकोमल शकुन्तला से छुपा कर रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा ही कर सकती है। इससे विपरित कोई भी स्थिति नामुमकिन लगती है।। अनुसूया का स्वभाव अधिक धीर-गम्भीर और विषम परिस्थित को सम्हालने में काबिल होने से[8] वही दुर्वासा के पास पहुँचे उसमें औचित्य है। देवनागरी पाठ के अनुसार यदि अनसूया के द्वारा प्रियंवदा को इस कार्य के लिए भेजी जाती है तो वह प्रियंवदा के चञ्चल प्रकृति (नटखट स्वभाव) के साथ सुसंगत नहीं होता है। अतः शाप-मोचन की याचना करने के लिए, काश्मीरी, बंगाली और मैथिली पाठानुसार अनुसूया को ही भेजी जाय वही उसके चरित्र के साथ समञ्जस प्रतीत होता है।।

इस प्रसंग का पूर्वार्द्ध काश्मीरी, बंगाली एवं मैथिली पाठों में भले ही सुरक्षित रहा हो, किन्तु जैसे ही हम आगे चल कर देखते है तो बंगाली और मैथिली पाठ में इस प्रसंग का उत्तरार्ध दूषित हुआ है। जैसे कि – शकुन्तला को जो शाप मिला है उसको छुपा क र रखने का प्रस्ताव अनुसूया ने रखा है। यह बात अनुसूया की प्रकृति के अनुरूप नहीं लगता है।

---

[7] राव बहाद्दूर पं. श्रीगौरीशङ्कर ही. ओझा जी ने बताया है कि ईसा पूर्व 500 से ई.सन् 350 तक ब्राह्मी लिपि चलती थी। तत्पश्चात् ई.सन्. 400 से 500 तक गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि का प्रचलन रहा। कालान्तर में, ई. सन् 600 से 900 पर्यन्त कुटिल लिपि चली, जिसमें से काश्मीर की शारदा लिपि का विकास हुआ है। ई. सन् 800 में लिखा हुआ राजा मेरु वर्मा के शिलालेख से ज्ञात होता है कि काश्मीर में शारदा लिपि मौजुद थी, जिसमें से कालान्तर में टाकरी, पंजाबी, गुरुमुखी का विकास हुआ। ई. सन् 1000 में बंगाली लिपि का प्रवर्तन हुआ, जिसमें से ई.स. 1100 में नेवारी लिपि चल प ड़ी। और उसी के बाद ही मैथिली, उडिया आदि लिपिओं का उद्भव हुआ है।। (प्राचीन भारतीय लिपिमाला, प्रस्तावना पृ. 42, मुनशीराम मनोहरलाला, दिल्ली, 1918)

[8] उदाहरणतया : तृतीयांक में शकुन्तला ने जब कहा कि अन्तःपुर विरहपर्युत्सुकस्य राज्ञः उपरोधेन किम्। तब इस वाक्य को सुन कर दुष्यन्त को बुरा लगेगा ऐसा सोच कर अनसूया ने सद्यः कहा है कि बहुवल्लभाः राजानः श्रूयन्ते इत्यादि। इसमें अनसूया की प्रौढि दिखती है। नाजुक स्थिति को सम्हालने में वही कुशल सिद्ध होती है।

इस विसंगति को समझने के लिए अवशिष्ट रही काश्मीरी वाचना के पाठ को देखना होगा। केवल काश्मीरी पाठ में ही ऐसा है कि दुर्वासा के शाप की बात दो सहेलियों के बीच संगोपित रखने का प्रस्ताव प्रियंवदा के द्वारा रखा जाता है। तुलनात्मक अभ्यास से यह बात साफ प्रकट होती है कि काश्मीरी पाठ में शापमोचन के लिए अनुसूया जाती है और शाप को छुपा क र रखने की बात प्रियंवदा ने कही थी। लेकिन इस काश्मीरी पाठ का जब मैथिली में संक्रमण हुआ होगा तब अनुसूया के मुख में एक अधिक उक्ति का प्रक्षेप किया गया हैः – "एहि देवदाकज्जं दाव णिव्वुत्तम्ह। (इति परिक्रामतः।) "। (अर्थात् चलो हम दोनों उसका यानें शकुन्तला का देवकार्य संपन्न करें।) ऐसा एक अधिक वाक्य बोल कर दोनों सहेलियाँ रंगमंच पर परिक्रमण करती है। किन्तु इस नये (प्रक्षिप्त) वाक्य के कारण उसके पीछे आ रही तीनों उक्तियाँ की वक्त्रियाँ उलटा-पूलटा हो जाती है। जिसके कारण शाप को छुपा क र रखने की बात जो मूल में प्रियंवदा ने की थी, वह अनुसूया के मुख में आ जाती है।।

मैथिली वाचना में मिल रहा उपर्युक्त एक वाक्य प्रक्षिप्त है ऐसा मानने का आधार क्या है ? तो उसके एकाधिक समाधान है : (1) दुर्वासा का शाप मिलने की दुर्घटना आकारित हो जाने के बाद उसीके प्रभाव से बाहर निकल कर, क्या अनुसूया देवता-कार्य के निर्वर्तन की याद करने की मानसिकता में रहे सकती है ? यह सम्भव ही नहीं है। अतः काश्मीरी वाचना के पाठ में जैसे प्रियंवदा कहती है कि हमारी सखी को राजा ने अङ्गुठी दे रखी है, उससे वह स्वाधीनोपाय है। तब दोनों सहेलियाँ रंगमंच पर परिक्रमण करके सीधी उसी कुटिर पर ही जाय (जहाँ शकुन्तला अपने प्रिय के विचारों में खोई खोई बैठी है) वही उचित है। (2) यह वाक्य प्रक्षिप्त होने का दूसरा प्रमाण यह भी है कि शूरु में बताया गया है कि शकुन्तला को (स्वयं) सौभाग्यदेवता अर्चन भी करना है, इस लिए कुछ ज्यादा पुष्पों का चयन किया जाय। इस पूर्वोक्त सन्दर्भ के विरुद्ध जब बोला जाता है कि – एहि, देवकार्यं तावद् अस्याः (शकुन्तलायाः) निर्वर्तयाव। तब वह असंगत सिद्ध होता है। क्योंकि शकुन्तला के बदले में सहेलियाँ ही उसके लिए देवकार्य सम्पन्न करने के लिए उद्यत हो जाती है। और (3) तीसरा बिन्दु यह है कि दोनों सखियों ने आरम्भ में बलिकर्म तथा सौभाग्यदेवता का ही निर्देश किया है। इन दोनों को छो ड़ कर देवताकार्य का उल्लेख कहाँ से आया ? अर्थात् पूर्वापर सन्दर्भ में, देवताकार्य का उल्लेख प्रक्षिप्त मानने का यह भी आधार है। (4) चौथा बिन्दु यह भी ध्यातव्य है कि वे दोनों देवता के पास न जा कर पहुँचती तो वहीं है कि जहाँ शकुन्तला अन्यमनस्क होके बैठी है ! अतः, मैथिली वाचना में , रंगमंच पर दोनों सहेलियों के परिक्रमण को दिखलाते हुए जो एक अधिक वाक्य मिलता है, वह किसी अज्ञात रंगकर्मी का प्रक्षिप्त किया हुआ वाक्य ही है। कालान्तर में, प्रतिलिपिकरण के दौरान यह रंगसूचना का अनुसरण कि या गया होगा, जिसके कारण बंगाली वाचना में, (और तदनन्तर देवनागरी इत्यादि में भी) प्रियंवदा की उक्ति अनुसूया की बन जाती है।।

शाप का प्रतिविधान मांग कर अनुसूया वापस आ कर सब बात बताती है तो प्रियंवदा ने कहा कि दुष्यन्त ने हस्तिनापुर जाते समय शकुन्तला को अङ्गूठी दी है। जिससे वह स्वाधीनोपाय है, अब चिन्ता का कोई कारण नहीं है। तब यह बात प्रियंवदा से जान कर अनुसूया ने जरूर इतनी सावधानी बरती है कि उसने शकुन्तला से वह अङ्गूठी किसी भी तरह से प्राप्त करके सुरक्षित करली है, और चतुर्थाङ्क के अन्त में (दोनों वाचनाओं के पाठ के अनुसार) अभिज्ञानाभरण रूप उस राजमुद्रा को शकुन्तला के हाथ में (अनुसूया ने ही) सोंप दी है। क्योंकि उसी अनुसूया ने दुर्वासा के मुख से प्रत्यक्ष में सुना था कि किसी अभिज्ञानाभरण से ही शाप की निवृत्ति होगी।। इस लम्बी चर्चा से सारभूत बात यह निकलती है कि (1) शाप-मोचन माँगने के लिये अनुसूया का जाना – वही पूर्वापर सन्दर्भ में सुसंगत सिद्ध होता है। तथा (2) शाप की बात छुपा क र रखने का

प्रस्ताव अनुसूया का नहीं हो सकता, वह प्रियंवदा का ही हो गा। बंगाली पाठ में पहेली बात सुरक्षित रही है, लेकिन दूसरी अशुद्धि का प्रवर्तन मैथिली परम्परा में हुए रंगसूचना के प्रक्षेप के कारण हुआ है। परिणामतः तीसरे स्तर पर देवनागरी और दाक्षिणात्य पाठों में दोनों तरह की अशुद्धियाँ संक्रान्त हो कर सर्वत्र प्रसारित हो गई है।।

[4]

उपर्युक्त चर्चा में यह दिखाने की कोशिश की गई है कि मैथिली पाठपरम्परा में कहाँ पर एक अधिक वाक्य का और एक रंगसूचना का प्रक्षेप हुआ होगा। लेकिन इस "देवताकार्य के निर्वर्तन" का प्रस्ताव प्रक्षिप्त करने का बीज-निक्षेप कहाँ हुआ था ? – यह जानना भी रसप्रद होगा। प्रियंवदा ने पुष्पभाजन को देख कर, जब "बलि कर्म के लिए इतने पुष्प पर्याप्त है" ऐसा कहा था तब अनसूया का प्रतिभाव इन शब्दों में थाः — "णं सहीए सउंदलाए वि सोहग्गदेवआ अच्चणीआ।" इस प्राकृत-उक्ति का संस्कृत छायानुवाद करते समय, "यह तृतीयान्त या पञ्चम्यन्त या षष्ठ्यन्त प्रयोग है ?" यह सोचने के लिए रुकना जरूरी है। इसी शाप-प्रसंग की अन्य उक्तिओं के देखेंगे तो "सहीए सउंदलाए" को तृतीयान्त में ही ली गई है। यदि उसको तृतीयान्त प्रयोग के रूप में लेंगे तो उसका मतलब होगा कि स्वयं शकुन्तला को अपने सौभाग्य के लिए देवताओं का अर्चन करना था, और वही स्वाभाविक भी है। अपनी सखी शकुन्तला के लिए ये सखियाँ सौभाग्यदेवता की अर्चा करें वह तो असंगत है। किन्तु इस नाटक के अनेक टीकाकारों ने, जिसमें मैथिल पाठ पर टीका लिखने वाले शङ्कर और देवनागरी पाठ पर टीका लिखनेवाले राघवभट्ट भी समाविष्ट है, उन्होंने "ननु सख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवता अर्चनीया।" ऐसा षष्ठी विभक्ति से अनुवाद किया है। बस इस संस्कृत छायानुवाद की गलती ने ही, आगे चल कर "देवताकार्य के निर्वर्तन" का प्रस्ताव प्रक्षिप्त करवाया है ! दूसरा ज्ञातव्य बिन्दु यह है कि अभिज्ञानशाकुन्तल के प्राकृत-संवादों को लेकर उन्हीं का केवल संस्कृतच्छायानुवाद तैयार करने की एक प्रवृत्ति मध्यकालिक भारत में हुई थी, जिसकी पाण्डुलिपिओं को "प्राकृतविवृति" एवं "प्राकृतच्छाया" जैसे नाम दिये गये हैं। ऐसे प्राकृत-संवादों के संस्कृत च्छायानुवादों में भी इस उक्ति का "ननु प्रियसख्याः शकुन्तलायाः सौभाग्यदेवता अर्चनीया।" ऐसा षष्ठ्यन्त शब्दों से ही अनुवाद किया गया है।।

उपसंहारः—

1. शाकुन्तल के श्रेष्ठ चतुर्थाङ्क में आया हुआ शाप-प्रसंग का पाठ, जो देवनागरी वाचना में संचरित हुआ है वह अनेक विसंगतिओं से भरा हुआ पाठ है। और उसी तरह से दाक्षिणात्य वाचना का पाठ भी प्रदूषित हुआ है।
2. बृहत्पाठपरम्परा के अभिज्ञानशाकुन्तल की तीनों वाचनाओं में से केवल काश्मीर की शारदालिपि में संचरित हुआ पाठ ही प्राचीनतम होने के साथ साथ तर्कसंगत एवं नाट्यानुरूप सिद्ध होता है। ऐसे पाठ को सर्वथा मौलिक कहेने का अकाट्य प्रमाण हमारे पास नहीं है, लेकिन उसे हम अधिक श्रद्धेय जरूर कहेंगे।।
3. काश्मीरी वाचना के पाठ में से प्रथम सोपान पर मैथिली वाचना के पाठ में विकृति एवं प्रक्षेप पैदा हुए होगें। तत्पश्चात् उसका अनुगमन बंगाली वाचना में भी हुआ है ऐसा दिखता है।
4. अन्तिम चरण में, देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में मूल पाठ का संक्षेपीकरण होने के साथ साथ, विसंगतिओं वाले पाठ्यांश का बढावा होने लगा है।

5. परिणामतः इस नाटक की किसी भी तरह से साहित्यालोचना शूरु करने से पहेले, इसके पाठ की तुलनात्मक आलोचना करनी चाहिए, जो न केवल आवश्यक है, अनिवार्य भी है ।।

।। ॐ इति शम् ।।

उपयुक्त पाण्डुलिपियों की सूचिः—

1. प्राकृतविवृति, क्रमांक 12594, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, म.स. युनिवर्सिटी, वडोदरा
2. शाकुन्तलच्छाया, क्रमांक 09219, ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, म.स. युनिवर्सिटी, वडोदरा
3. शाकुन्तलच्छाया, क्रमांक 79-1907-15, भाण्डारकर ओरिएन्टल इन्स्टीट्युट, पूणें
4. शाकुन्तल प्राकृतांश टीका, क्रमांक – 23986, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । शारदा पाण्डुलिपि क्रमांक – 1247, एवं 159 बोडलियन लाईब्रेरी, ऑक्सफर्ड
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । पाण्डुलिपि क्रमांक – 16630, हेमचन्दराचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटण, गुजरात

सन्दर्भ-ग्रन्थों की सूचि

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (राघवभट्टकृतार्थद्योतनिकया व्याख्यया सनाथीकृतम्), सं. नारायण राम आचार्य, प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, 2006
2. अभिज्ञानशकुन्तलम् (मैथिलपाठानुगम्), शङ्कर-नरहरिकृत-व्याख्याद्वय-समलङ्कृतम् । सं. रमानाथ शर्मा, मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा, 1957
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (काश्मीरी वाचना), सं. एस. के. बेलवालकर, प्रका. साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 1965
4. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (चन्द्रशेखर-चक्रवर्तीकृत-सन्दर्भदीपिकया टीकया समलङ्कृतम्), सं. वसन्त कुमार म. भट्ट, प्रका. राष्ट्रिय पाण्डुलिपि मिशन, नई दिल्ली, 2013
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (दाक्षिणात्य वाचना), (काटयवेमकृत-कुमारगिरिराजीया-टीका-समेतम्), सं. चेलमचेर्ल रंगाचार्य, प्रका. आन्ध्रप्रदेश साहित्य अकादेमी, हैदराबाद, 1982
6. कालिदास ग्रन्थावली । (द्वितीय संस्करण), सं. रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रका. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1986
7. कालिदास ग्रन्थावली, (द्वितीयो भागः) (हिन्दी अनुवाद के साथ), । सं. रेवाप्रसाद द्विवेदी, प्रका. कालिदास संस्कृत अकादेमी, उज्जयिनी, 2008
8. Die Kacmirer Cákuntalaa,- Handschrift, Dr. Karl Burkhard, Sitzungsberichte, Akademie Der Wissenschaften, Wine, 1884 [अभिज्ञानशाकुन्तलम् । (काश्मीरी वाचना),

(डेक्कन कॉलेज, पूणें की 195 क्रमांक की शारदा-पाण्डुलिपि, जो ब्यूल्हर को 1875 में काश्मीर से प्राप्त हुई थी, उसका रोमन स्क्रीप्ट में रूपान्तरण) सं. कार्ल बुरखड, 1884]

9. Kalidasa's Sákuntala, (Bangali Recension), by Richard Pischel, Harvard University Press, 1922
10. The Abhijnanasákuntala of Kalidasa, (The purer Deva-nagari Text), Ed. P. N. Patankar, 1902.